I J C R M
International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में गिरते भूजल स्तर का कृषि प्रतिरूप और आजीविका पर प्रभाव: एक स्थानिक विश्लेषण

डॉ. पदमा गुप्ता
सहायक आचार्य, भूगोल एल.बी.एस. टी. टी. कॉलेज, कोटा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author: * डॉ. पदमा गुप्ता

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.22794679

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र भारत के शुष्क एवं अर्ध-शुष्क भौगोलिक क्षेत्रों में तीव्र गति से गिरते भूजल स्तर के परिणामस्वरूप शस्य प्रतिरूप (फसल प्रारूप), कृषि उत्पादकता, पारिस्थितिकीय संतुलन तथा ग्रामीण आजीविका पर पड़ने वाले बहुआयामी प्रभावों का एक समग्र स्थानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। पिछले तीन से चार दशकों में हरित क्रांति की तकनीकों, अनियंत्रित नलकूप उत्खनन, अत्यधिक ऊर्जा अनुदान तथा जल-सघन नकदी फसलों के अविवेकपूर्ण चयन ने इन पारिभाषिक रूप से जल-अल्पता वाले क्षेत्रों में भूजल संसाधनों का संकटपूर्ण दोहन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक क्षेत्रीय अवलोकनों, उपग्रह आधारित स्थानिक आंकड़ों तथा द्वितीयक जल-भूवैज्ञानिक प्रतिवेदनों के समन्वय पर आधारित है। विश्लेषण यह प्रमाणित करता है कि जल-स्तर के अत्यधिक नीचे जाने से उच्च जल मांग वाली फसलों (जैसे गेहूं, धान, कपास और गन्ना) के रकबे में संरचनात्मक ह्रास हुआ है तथा किसानों को विवश होकर निम्न उत्पादकता वाली, शुष्क जलवायु प्रतिरोधी फसलों (जैसे बाजरा, ज्वार, दलहन और तिलहन) की ओर पुनः लौटना पड़ रहा है।

इसके अतिरिक्त, सिंचाई की बढ़ती लागत, नलकूपों के विफल होने तथा भूमि क्षारीयता में वृद्धि ने छोटे और सीमांत कृषकों को ऋणग्रस्तता, भूमिहीनता और अनैच्छिक मौसमी प्रवासन के दुष्चक्र में धकेल दिया है। अध्ययन के निष्कर्ष स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान संकट केवल संसाधन-अल्पता का नहीं, बल्कि दोषपूर्ण नीतिगत प्राथमिकताओं और अनियंत्रित दोहन का परिणाम है। अंततः, शोध पत्र में सूक्ष्म-सिंचाई प्रणालियों, सहभागी भूजल प्रबंधन, परंपरागत जल संचयन संरचनाओं के पुनरुद्धार तथा फसल विविधीकरण आधारित एक व्यापक, टिकाऊ एवं समेकित नीतिगत रूपरेखा प्रस्तावित की गई है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 12-05-2026
- **Accepted:** 26-06-2026
- **Published:** 30-06-2026
- **IJCRM:**5(3); 2026: 1151-1157
- **©2026, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

गुप्ता प. शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में गिरते भूजल स्तर का कृषि प्रतिरूप और आजीविका पर प्रभाव: एक स्थानिक विश्लेषण. Int J Contemp Res Multidiscip. 2026;5(3):1151-1157.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मुख्य शब्द: शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्र, भूजल अवक्षय, शस्य प्रतिरूप, ग्रामीण आजीविका, स्थानिक विश्लेषण, सहभागी जल प्रबंधन, सूक्ष्म-सिंचाई।

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

1. प्रस्तावना

जल किसी भी कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था की धुरी होता है। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ कुल कार्यबल का एक विशाल हिस्सा अपनी जीविका के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राथमिक क्षेत्र पर निर्भर है, जल सुरक्षा सीधे तौर पर खाद्य सुरक्षा और सामाजिक स्थिरता से जुड़ी हुई है। देश का लगभग तिरसठ प्रतिशत शुद्ध सिंचित क्षेत्र और अस्सी प्रतिशत से अधिक ग्रामीण घरेलू जल आपूर्ति पूरी तरह से भूजल स्रोतों पर आश्रित है। भौगोलिक दृष्टिकोण से, भारत का लगभग तिरेपन प्रतिशत भू-भाग शुष्क और अर्ध-शुष्क जलवायु परिस्थितियों के अंतर्गत वर्गीकृत है। इन क्षेत्रों की स्वाभाविक पहचान अनिश्चित, अल्प और विषम मानसूनी वर्षा, उच्च तापमान, तीव्र वाष्पीकरण और सीमित सतही जल स्रोतों से होती है।

ऐतिहासिक रूप से, शुष्क और अर्ध-शुष्क अंचलों में कृषि प्रणाली प्रकृति के साथ एक अनुकूलनकारी संतुलन पर आधारित थी। किसान पारंपरिक रूप से वर्षा आधारित फसलों, जैसे मोटे अनाज (बाजरा, ज्वार, रागी), स्थानीय दलहनों (चना, मूंग, मोठ) और पशुपालन के समेकित मॉडल को अपनाते थे। किंतु 1960 के दशक के उत्तरार्ध में प्रारंभ हुई हरित क्रांति ने कृषि परिदृश्य को बुनियादी रूप से बदल दिया। अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों के अनियंत्रित उपयोग और उच्च जल मांग वाली व्यावसायिक फसलों के प्रसार ने जल-अल्प क्षेत्रों में भी सिंचाई की एक अंधी होड़ शुरू कर दी।

शुरुआती दौर में नलकूपों के तीव्र विस्तार और रियायती दरों पर बिजली की उपलब्धता ने उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की, जिसे एक कृषि चमत्कार के रूप में सराहा गया। परंतु, प्रकृति के संतुलन की अनदेखी करते हुए किए गए इस अनियंत्रित दोहन ने धीरे-धीरे एक गंभीर संकट का रूप ले लिया। वार्षिक पुनर्भरण दर की तुलना में भूजल की निकासी कई गुना अधिक हो गई, जिसके परिणामस्वरूप जल स्तर में प्रतिवर्ष खतरनाक गिरावट दर्ज की जाने लगी। आज स्थिति यह है कि अनेक विकास खंड 'अति-दोहित' (Over-exploited) और 'संकटपूर्ण' (Critical) श्रेणियों में पहुंच चुके हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का केंद्रीय विमर्श यह रेखांकित करना है कि जब एक जल-संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र में आधारभूत जल संसाधन समाप्त होने की कगार पर पहुंच जाता है, तो उसका प्रभाव केवल जल की उपलब्धता तक सीमित नहीं रहता। यह कृषि के पूरे ढांचे—अर्थात् शस्य प्रतिरूप, फसल विविधता, मृदा स्वास्थ्य और उत्पादन लागत—को खंडित कर देता है, जिसका सीधा और विनाशकारी प्रभाव किसानों की आजीविका, सामाजिक ताने-बाने और क्षेत्रीय विकास पर पड़ता है।

2. सैद्धांतिक एवं संकल्पनात्मक ढांचा

संसाधन अर्थशास्त्र और पारिस्थितिकीय भूगोल के दृष्टिकोण से, भूजल एक 'साझा संसाधन' (Common Pool Resource) है। गैर-अधिनियमित और अनियंत्रित उपयोग की स्थिति में यह गैरेट हार्डिन द्वारा प्रतिपादित 'सांझे की त्रासदी' (Tragedy of the Commons) के सिद्धांत को चरितार्थ करता है। जब प्रत्येक कृषक अपने व्यक्तिगत लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से भूमिगत जल का अधिक से अधिक दोहन करने का प्रयास करता है, तो सामूहिक रूप से संपूर्ण समुदाय उस प्राकृतिक पूंजी के स्थायी विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है।

इसके साथ ही, प्रस्तुत अध्ययन आजीविका सुरक्षा के 'टिकाऊ आजीविका दृष्टिकोण' (Sustainable Livelihoods Approach) का उपयोग करता है। यह दृष्टिकोण पांच प्रकार की परिसंपत्तियों—प्राकृतिक (जल व भूमि), भौतिक (सिंचाई उपकरण व नलकूप), वित्तीय (आय व ऋण), मानव (श्रम व कौशल) और सामाजिक (पारस्परिक सहयोग व सामुदायिक संगठन)—के अंतर्संबंधों का परीक्षण करता है। जब भूजल (प्राकृतिक पूंजी) का ह्रास होता है, तो कृषकों को गहरे नलकूप लगाने और शक्तिशाली मोटर पंप खरीदने के लिए भारी मात्रा में वित्तीय पूंजी का व्यय करना पड़ता है, जो अंततः उनके ऋणग्रस्त होने और मानव पूंजी के क्षरण (प्रवासन व कुपोषण) के रूप में सामने आता है।

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

3. शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत स्थानिक शोध पत्र निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यों पर केंद्रित है:

- शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में पिछले तीन दशकों के दौरान भूजल स्तर के अवक्षय की स्थानिक एवं सामयिक प्रवृत्तियों का मानचित्रण और विश्लेषण करना।
- गिरते जल स्तर के प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में शस्य प्रतिरूप, फसल विविधीकरण तथा फसल सघनता में आए संरचनात्मक परिवर्तनों का मूल्यांकन करना।
- नलकूपों के सूखने, सिंचाई लागत में वृद्धि और कृषि उत्पादकता में गिरावट के आर्थिक प्रभावों का आकलन करना।
- सीमांत, छोटे और बड़े कृषकों के मध्य जल संकट के विषम प्रभावों तथा इसके कारण उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक संकट (ऋणग्रस्तता, आजीविका असुरक्षा और प्रवासन) की पड़ताल करना।
- जल की स्थानिक उपलब्धता के अनुरूप एक वैज्ञानिक, संधारणीय और समुदाय-आधारित जल प्रबंधन एवं कृषि नियोजन प्रारूप प्रस्तावित करना।

4. शोध प्रविधि एवं अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध अध्ययन में एक मिश्रित शोध प्रविधि (गुणात्मक एवं मात्रात्मक) का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का स्थानिक दायरा मुख्य रूप से पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी भारत के विशिष्ट शुष्क एवं अर्ध-शुष्क भू-भागों (विशेषकर राजस्थान के थार मरुस्थल से संलग्न क्षेत्र, उत्तरी गुजरात और पश्चिमी मध्य प्रदेश के पठारी भाग) पर केंद्रित है। यह संपूर्ण क्षेत्र जल-भूवैज्ञानिक दृष्टि से जटिल, कठोर चट्टानी अथवा गहरी बलुई संरचनाओं से निर्मित है, जहाँ भूजल का प्राकृतिक पुनर्भरण अत्यंत धीमा होता है।

4.1 आंकड़ों के स्रोत

1. **प्राथमिक स्रोत:**

- चयनित अति-दोहित विकास खंडों के बीस गांवों में संरचित प्रश्नावली के माध्यम से चार सौ कृषक परिवारों का सर्वेक्षण।
- कृषक समूहों, जल प्रबंधकों और स्थानीय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ केंद्रित समूह परिचर्चाएं।
- नलकूपों की गहराई, जल तालिका की स्थिति और विद्युत खपत से संबंधित प्रत्यक्ष क्षेत्रीय मापन।

2. **द्वितीयक स्रोत:**

- केंद्रीय भूजल बोर्ड (सीजीवीडब्ल्यूबी) और राज्य भूजल विभागों के पिछले तीस वर्षों (1995 से 2025 तक) के त्रैमासिक जल स्तर निगरानी आंकड़े।
- कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा जारी जिला स्तरीय कृषि सांख्यिकी एवं भूमि उपयोग आंकड़े।
- भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) से प्राप्त वर्षा और तापमान के दीर्घकालिक आंकड़े।
- सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) पर आधारित उपग्रह चित्र (लैंडसैट और सेंटिनल), जिनका उपयोग शस्य प्रतिरूप और वनस्पति सूचकांक के स्थानिक बदलाव को मापने के लिए किया गया।

4.2 स्थानिक विश्लेषण विधियां

भूजल स्तर के स्थानिक विचरण को दर्शाने के लिए भौगोलिक सूचना प्रणाली के अंतर्गत 'प्रतिलोम दूरी भारित' (आईडीडब्ल्यू) प्रविधिकी का उपयोग करते हुए जल स्तर के समोच्च मानचित्र तैयार किए गए। शस्य प्रतिरूप में बदलाव को मापने के लिए फसल सघनता सूचकांक और 'गिब्स-मार्टिन फसल विविधीकरण सूचकांक' का अनुप्रयोग किया गया।

यहाँ प्रत्येक फसल के अंतर्गत आने वाले कुल कृषित क्षेत्र का प्रतिशत अनुपात है। जब यह मान एक के निकट होता है, तो यह अत्यधिक विविधीकृत फसल प्रारूप को दर्शाता है, जबकि शून्य की ओर इसका झुकाव एकांगी या विशिष्टीकृत फसल प्रतिरूप का संकेत देता है।

5. भूजल स्तर के अवक्षय की स्थानिक एवं सामयिक प्रवृत्तियां

अध्ययन क्षेत्र के जल-भूवैज्ञानिक आंकड़ों का स्थानिक विश्लेषण यह उद्घाटित करता है कि पिछले तीन दशकों में भूमिगत जल भंडारों की स्थिति अत्यंत चिंताजनक स्तर पर पहुंच चुकी है। 1990 के दशक के आरंभ में जहाँ औसत जल तालिका पंद्रह से पच्चीस मीटर की गहराई पर सुलभ थी, वहीं वर्तमान में अधिकांश कठोर चट्टानी और बलुई क्षेत्रों में यह स्तर अस्सी से एक सौ पचास मीटर से भी अधिक नीचे चला गया है।

अत्यधिक दोहन का यह संकट पूरे क्षेत्र में एक समान नहीं है, बल्कि इसमें तीव्र स्थानिक विषमताएं पाई जाती हैं:

- **गहरे जलोढ़ बेसिन क्षेत्र:** इन क्षेत्रों में शक्तिशाली सबमर्सिबल पंपों के उपयोग के कारण जल तालिका में गिरावट की दर प्रतिवर्ष एक से डेढ़ मीटर दर्ज की गई है। अत्यधिक गहराई पर स्थित जलभृतों (Aquifers) के दोहन से जल की लवणता और फ्लोराइड की सांद्रता में भारी वृद्धि हुई है।
- **कठोर चट्टानी पठारी क्षेत्र:** दक्कन ट्रैप और अरावली की तलहटी वाले अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जल धारण क्षमता स्वाभाविक रूप से सीमित होती है। इन क्षेत्रों में अनियंत्रित बोरवेल खनन ने उथले जलभृतों को पूरी तरह सुखा दिया है, जिसके परिणामस्वरूप गर्मी के महीनों में नब्बे प्रतिशत से अधिक नलकूप पूरी तरह क्रियाहीन हो जाते हैं।

क्षेत्र का प्रकार	1995 में औसत जल स्तर (मीटर)	2010 में औसत जल स्तर (मीटर)	2025 में औसत जल स्तर (मीटर)	वार्षिक गिरावट दर (मीटर/वर्ष)	भूजल विकास की स्थिति
गहरी बलुई संरचना (शुष्क अंचल)	25 – 35	50 – 70	90 – 140	2.5 – 3.2	अति-दोहित (>130%)
कठोर चट्टानी पट्टी (अर्ध-शुष्क अंचल)	12 – 18	30 – 45	60 – 95	1.8 – 2.4	संकटपूर्ण (100–120%)
नहर-सिंचित सीमांत क्षेत्र	8 – 12	15 – 22	25 – 40	0.8 – 1.1	संवेदनशील (70–90%)

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

पारंपरिक जलग्रहण क्षेत्र	10 – 14	18 – 25	35 – 50	1.0 – 1.3	अर्ध-संकटपूर्ण (80–100%)

भूजल विकास की स्थिति का 100 प्रतिशत से अधिक होना यह स्पष्ट करता है कि वार्षिक रूप से जितना जल वर्षा के माध्यम से भूमि के भीतर पुनर्भरण पाता है, उससे कहीं अधिक जल मानव द्वारा बाहर निकाल लिया जाता है। यह स्थिति सीधे तौर पर भावी पीढ़ियों के प्राकृतिक संसाधनों के अनधिकृत उपभोग को प्रदर्शित करती है।

6. शस्य प्रतिरूप (Cropping Pattern) पर प्रभाव

कृषि में शस्य प्रतिरूप किसी क्षेत्र विशेष में विभिन्न फसलों के अंतर्गत बोए गए क्षेत्रफल के आनुपातिक वितरण को संदर्भित करता है। यह प्रतिरूप मृदा की प्रकृति, तापमान और वर्षा जैसे भौतिक कारकों के साथ-साथ जल की सुनिश्चित उपलब्धता और बाजार मूल्य से गहराई से नियंत्रित होता है। भूजल स्तर के निरंतर गिरने से सिंचाई की सुनिश्चितता समाप्त हो गई है, जिसने कृषकों को अपने पारंपरिक और व्यावसायिक फसल निर्णयों में अमूलचूल रूपांतरण करने के लिए बाध्य किया है।

क्षेत्रफल में तीव्र संकुचन (-30% से -60%)	**क्षेत्रफल में बाध्यकारी वृद्धि (+25% से +40%)**
उच्च उत्पादन लागत, नलकूपों की विफलता	कम जल मांग, न्यूनतम लागत, किंतु सीमित लाभ

6.1 जल-सघन फसलों के क्षेत्रफल में संकुचन

1980 और 1990 के दशकों में जब भूजल आसानी से उपलब्ध था, शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के किसानों ने भी भारी मात्रा में गेहूं, शीतकालीन धान, गन्ना और संकर कपास जैसी फसलों की बुवाई शुरू कर दी थी। इन फसलों को पूरे विकास चक्र में पांच से आठ बार सघन सिंचाई की आवश्यकता होती है

वर्तमान स्थानिक विश्लेषण यह प्रमाणित करता है कि विगत दो दशकों में अति-दोहित विकास खंडों के भीतर गेहूं और कपास के कुल क्षेत्रफल में क्रमशः बत्तीस प्रतिशत और पैंतालीस प्रतिशत की शुद्ध कमी दर्ज की गई है। किसानों के पास अब इतना जल उपलब्ध नहीं है कि वे फसल के पकने तक निरंतर सिंचाई उपलब्ध करा सकें। मध्य-मौसम में ही बोरवेल के बैठ जाने अथवा जल प्रवाह धीमा हो जाने से खड़ी फसलें सूख जाती हैं, जिसके डर से किसानों ने जल-सघन फसलों का रकबा स्वतः ही घटा दिया है।

6.2 फसल विविधीकरण से एकल-फसल एवं मजबूरी के विविधीकरण की ओर संक्रमण

अध्ययन क्षेत्र में गिब्स-मार्टिन विविधीकरण सूचकांक का मान 0.72 (वर्ष 2000 में) से गिरकर 0.41 (वर्ष 2025 में) रह गया है। यह गिरावट दो अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है:

- **प्रथम चरण (अनुकूलन विविधीकरण):** शुरुआती दौर में जब जल की कमी शुरू हुई, तो किसानों ने उच्च जोखिम वाली एक फसल के स्थान पर कई कम जल वाली फसलों को मिलाकर बोना शुरू किया ताकि कोई एक फसल बची रहे।
- **द्वितीय चरण (संकटग्रस्त संकुचन):** वर्तमान में जल संकट इतना गंभीर हो चुका है कि किसान रबी (शीतकालीन) के मौसम में भूमि को खाली छोड़ने पर विवश हैं। जिन खेतों में पहले वर्ष में दो या तीन फसलें ली जाती थीं, वहाँ अब केवल खरीफ (मानसूनी) मौसम में ही खेती संभव हो पा रही है। फलस्वरूप, फसल सघनता जो कभी 165 प्रतिशत थी, गिरकर 112 प्रतिशत के स्तर पर सिमट गई है।

फसल का प्रकार	**प्रमुख फसलें**	**जल मांग (मिमी)**	**2000 में क्षेत्रफल अनुपात (%)**	**2025 में क्षेत्रफल अनुपात (%)**	**शुद्ध परिवर्तन (%)**	**प्रमुख कारण**
अत्यधिक जल-सघन	गेहूं, गन्ना, धान	600 – 1200	38.5	14.2	-24.3	सिंचाई की अपर्याप्तता, बोरवेल विफलता
मध्यम जल-सघन	सरसों, जीरा, इसबगोल	300 – 450	22.0	28.5	+6.5	कम सिंचाई में मध्यम आर्थिक लाभ
अल्प जल-सघन (पारंपरिक)	बाजरा, ग्वार, ज्वार	200 – 300	25.0	38.8	+13.8	वर्षा-आधारित प्रकृति, न्यूनतम जोखिम
शुष्क दलहन	चना, मूंग, मोठ	150 – 250	14.5	18.5	+4.0	मृदा उर्वरता सुधार, जल की न्यूनतम मांग

6.3 अल्प जल मांग वाली नकदी एवं औषधीय फसलों का उद्भव

संकट के सकारात्मक अनुकूलन के रूप में, कुछ अर्ध-शुष्क अंचलों में किसानों ने परंपरागत खाद्यान्न फसलों से हटकर कम जल मांग वाली वाणिज्यिक फसलों को अपनाया है। उदाहरणार्थ, सरसों, तारामीरा, जीरा, धनिया, इसबगोल और सौंफ जैसी फसलों का रकबा बढ़ा है। इन फसलों को केवल दो से तीन हल्की सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। यद्यपि इन फसलों का बाजार मूल्य अधिक होता है, किंतु इनमें कीट प्रकोप और मौसम की अनिश्चितता (जैसे असमय पाला या ओलावृष्टि) के कारण आर्थिक जोखिम बहुत अधिक बना रहता है।

7. कृषि उत्पादकता एवं आर्थिक लागत का स्थानिक विश्लेषण

गिरते भूजल स्तर ने न केवल फसलों के प्रकार को बदला है, बल्कि कृषि की उत्पादन लागत में कई गुना वृद्धि कर दी है। एक समय जो सिंचाई लगभग निःशुल्क या नाममात्र के खर्च पर उपलब्ध थी, आज वह कृषि की कुल लागत का सबसे बड़ा घटक बन गई है।

7.1 नलकूप निष्कर्षण लागत एवं गहराई की होड़

भूजल तालिका के नीचे जाने के कारण किसानों के बीच अपने नलकूपों को निरंतर और अधिक गहरा करने की एक विनाशकारी होड़ शुरू हो गई है। अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित आर्थिक विषमताएं स्पष्ट रूप से रेखांकित की गई हैं:

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

- **पंपिंग प्रौद्योगिकी का रूपांतरण:** तीन से पांच अश्वशक्ति (HP) के साधारण सेंट्रीफ्यूगल पंप अब पूरी तरह अनुपयोगी हो चुके हैं। उनके स्थान पर पंद्रह से पच्चीस अश्वशक्ति के बहु-चरणीय सबमर्सिबल पंप लगाने पड़ रहे हैं।
- **पूंजीगत व्यय का आधिक्य:** एक नया बोरवेल खोदने, उसमें आवरण नलिका (Casing Pipe) डालने, उच्च क्षमता का सबमर्सिबल पंप लगाने और बिजली का भारी कनेक्शन लेने में प्रति नलकूप औसतन डेढ़ लाख से तीन लाख रुपये का खर्च आता है।
- **असफलता की उच्च दर:** जलभृतों के सूखने के कारण खोदे गए लगभग चालीस से पचास प्रतिशत नए बोरवेल या तो पूरी तरह सूखे निकलते हैं या फिर एक-दो वर्षों के भीतर ही पानी देना बंद कर देते हैं। इस निष्फल पूंजीगत व्यय ने किसानों की आर्थिक रीढ़ तोड़ दी है।

7.2 सिंचाई जल की गुणवत्ता में ह्रास और मृदा क्षारीयता

भूजल स्तर के अत्यधिक नीचे जाने से न केवल जल की मात्रा घटी है, बल्कि उसकी रासायनिक गुणवत्ता भी अत्यधिक दूषित हो गई है। गहरे जलभृतों से निकाले जाने वाले जल में 'कुल घुलनशील ठोस' (TDS), सोडियम अधिशोषण अनुपात (SAR) और अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (RSC) की मात्रा खतरनाक स्तर तक बढ़ गई है।

इस खारे और क्षारीय जल से निरंतर सिंचाई करने के कारण उपजाऊ भूमि धीरे-धीरे ऊसर में परिवर्तित हो रही है। मृदा की जल धारण क्षमता नष्ट हो रही है, पोषक तत्वों की उपलब्धता बाधित हो रही है और प्रति हेक्टेयर औसत फसल उत्पादकता में पंद्रह से पच्चीस प्रतिशत की भारी गिरावट दर्ज की गई है। किसान को न केवल जल संकट का, बल्कि अपनी उपजाऊ भूमि के बंजर होने का दोहरा संकट भी झेलना पड़ रहा है।

8. ग्रामीण आजीविका पर बहुआयामी प्रभाव

आजीविका केवल आय का साधन नहीं है, बल्कि यह मानव के सामाजिक सम्मान, स्वास्थ्य, शिक्षा और भविष्य की सुरक्षा का समुच्चय है। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जब कृषि का आधारभूत संसाधन—भूजल—नष्ट होता है, तो ग्रामीण जीवन का पूरा पारिस्थितिकी तंत्र चरमरा जाता है।

8.1 किसान श्रेणियों के मध्य विषमता: जल का असमान वितरण

भूजल का संकट एक वर्गविहीन संकट नहीं है; इसका सबसे गंभीर प्रहार सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों पर पड़ता है।

- **बड़े एवं साधन-संपन्न कृषक:** बड़े कृषक जिनके पास वित्तीय पूंजी और बैंक ऋण की सुलभता होती है, वे लगातार गहरे बोरवेल खोदने, भारी मोटरें लगाने और नलकूप विफल होने पर नया बोरवेल कराने में सक्षम होते हैं। कई क्षेत्रों में इन बड़े किसानों ने 'जल बाजार' (Water Markets) पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया है, जहाँ वे अत्यधिक ऊंचे दामों पर पड़ोस के छोटे किसानों को सिंचाई का जल बेचते हैं।
- **छोटे एवं सीमांत कृषक:** सीमांत और लघु किसानों के पास न तो इतनी भूमि होती है और न ही वित्तीय सामर्थ्य कि वे बार-बार गहरे नलकूप खुदवा सकें। जब उनका उथला बोरवेल या कुआं सूख जाता है, तो वे पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर हो जाते हैं या फिर बड़े किसानों से मनमाने दामों पर जल खरीदने को विवश होते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे व्यावहारिक रूप से 'जल-विहीन' (Water-less) कृषक बन जाते हैं और उनकी भूमि असिंचित बंजर भूमि में तब्दील हो जाती है।

8.2 ऋणग्रस्तता का दुष्चक्र और संकटग्रस्त परिसंपत्ति बिक्री

अध्ययन में शामिल अस्सी प्रतिशत से अधिक छोटे किसानों ने स्वीकार किया कि उनके ऊपर वर्तमान में जो ऋण का बोझ है, उसका प्राथमिक कारण कृषि उत्पादन में हानि नहीं, बल्कि बोरवेल खुदवाने और सिंचाई उपकरणों की बार-बार मरम्मत कराने में लिया गया कर्ज है। जब अत्यधिक लागत के बावजूद खोदा गया बोरवेल सूखा निकल जाता है, तो किसान उस कर्ज को चुकाने में पूरी तरह असमर्थ हो जाता है।

इस कर्ज के भुगतान के लिए किसान अक्सर अपनी चल संपत्तियों (पशुधन, गहने) और अंततः अपनी कृषि भूमि के एक हिस्से को अत्यंत कम कीमतों पर बेचने को विवश होते हैं, जिसे अर्थशास्त्र में 'संकटग्रस्त बिक्री' (Distress Sale) कहा जाता है। यह प्रक्रिया ग्रामीण समाज में भूमिहीनता और वर्ग असमानता को तेजी से बढ़ावा दे रही है।

8.3 बाध्यकारी मौसमी प्रवासन (Distress Migration)

कृषि से जीविका चलना असंभव हो जाने की स्थिति में ग्रामीण परिवारों के समक्ष केवल एक ही विकल्प बचता है—गाँव छोड़ना।

- **प्रवासन की प्रकृति:** यह प्रवासन कोई स्वैच्छिक या बेहतर अवसर की तलाश में किया गया स्थानांतरण नहीं है, बल्कि यह शुद्ध रूप से एक 'बाध्यकारी अस्तित्वगत प्रवासन' है।
- **गंतव्य एवं कार्य:** अध्ययन क्षेत्र से युवा और कार्यशील पुरुष निकटवर्ती बड़े शहरों, औद्योगिक क्षेत्रों अथवा खनन क्षेत्रों (जैसे पत्थर की खदानों, ईंट-भट्ठों और निर्माण स्थलों) में अकुशल दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए पलायन कर रहे हैं।
- **परिवार पर प्रभाव:** पुरुषों के पलायन के पश्चात गाँव में केवल वृद्ध, महिलाएं और छोटे बच्चे ही शेष रह जाते हैं। इससे महिलाओं पर दोहरी जिम्मेदारी आ जाती है—उन्हें घरेलू जिम्मेदारियों के साथ-साथ बंजर होती जा रही भूमि और सीमित पशुधन की देखरेख भी करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, दूर-दराज के स्थानों से सिर पर पानी ढोकर लाने की प्राथमिक जिम्मेदारी भी महिलाओं की ही होती है, जिससे उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

9. संस्थागत, विधिक एवं तकनीकी प्रत्युत्तर: एक समालोचनात्मक दृष्टि

भूजल संकट से निपटने के लिए सरकारी स्तर पर अनेक योजनाएं और नीतियां बनाई गई हैं, किंतु धरातल पर उनका प्रभाव अत्यंत सीमित और कई बार विरोधाभासी रहा है।

9.1 विधिक ढांचे की ऐतिहासिक त्रुटि

भारत में भूजल के स्वामित्व से संबंधित कानून अभी भी उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक कालीन 'भारतीय सुखाधिकार अधिनियम, 1882' (Indian Easements Act, 1882) के सिद्धांतों पर आधारित है। यह

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कानून भूमि के स्वामी को उसकी भूमि के नीचे स्थित समस्त भूजल पर असीमित और अनियंत्रित अधिकार प्रदान करता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि जिसके पास जितनी अधिक भूमि होगी और जिसके पास जितनी गहरी बोरिंग कराने का पैसा होगा, वह उतना ही अधिक साझा जल भंडार चूस सकता है। जब तक भूजल को एक साझा सामुदायिक प्राकृतिक धरोहर घोषित नहीं किया जाता, तब तक किसी भी विधिक विनियमन का सफल होना असंभव है।

9.2 ऊर्जा अनुदान (Power Subsidy) का नकारात्मक प्रभाव

कई राज्य सरकारों द्वारा किसानों को दी जाने वाली मुफ्त अथवा अत्यधिक रियायती विद्युत आपूर्ति ने भूजल दोहन की आग में घी का काम किया है। चूँकि बिजली की खपत का कोई वास्तविक वित्तीय भार किसान पर तुरंत नहीं पड़ता, इसलिए पानी निकालने की सीमा तय करने का कोई आर्थिक प्रोत्साहन नहीं रह जाता। किसान मोटर चलाकर छोड़ देते हैं, जिससे आवश्यकता से अधिक सिंचाई होती है और बहुमूल्य जल वाष्पीकरण व अपवाह के माध्यम से व्यर्थ बह जाता है।

9.3 आधुनिक तकनीकी हस्तक्षेपों की सीमाएं

- **सूक्ष्म-सिंचाई प्रणालियां (ड्रिप व स्प्रिंकलर):** प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के अंतर्गत ड्रिप (टपक) और स्प्रिंकलर (फव्वारा) सिंचाई पर भारी अनुदान दिया जा रहा है। यद्यपि ये प्रणालियां पानी की चालीस से साठ प्रतिशत बचत करती हैं, किंतु देखा यह गया है कि पानी की बचत होने पर किसान उस बचे हुए पानी से अतिरिक्त भूमि पर पुनः जल-सघन फसलें बोना शुरू कर देते हैं (जिसे 'जेवन्स विरोधाभास' या Jevons' Paradox कहा जाता है), जिससे कुल भूजल निकासी में कोई वास्तविक कमी नहीं आ पाती।
- **पारंपरिक जल संरचनाओं की उपेक्षा:** आधुनिक नलकूप संस्कृति ने जोहड़, टांका, नाड़ी, खड़ीन और बावड़ियों जैसी कालजयी पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों को पूरी तरह उपेक्षित और नष्ट कर दिया। ये संरचनाएं स्थानीय स्तर पर वर्षा जल को रोककर उथले कुओं को पुनर्भरण प्रदान करती थीं और पारिस्थितिकी को जीवित रखती थीं।

10. भविष्योन्मुखी समाधान एवं समेकित संधारणीय नीतिगत प्रारूप

शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों को एक स्थायी पारिस्थितिकीय और मानवीय त्रासदी से बचाने के लिए केवल तात्कालिक राहत उपायों से काम नहीं चलेगा। इसके लिए एक समग्र, एकीकृत और समुदाय-आधारित पुनरुद्धार मॉडल की आवश्यकता है:

10.1 जल बजट आधारित कृषि-पारिस्थितिकीय नियोजन (Agro-climatic Planning)

प्रत्येक ग्राम पंचायत स्तर पर मानसूनी वर्षा के पश्चात 'ग्राम जल बजट' तैयार किया जाना चाहिए। गाँव के जलभृत में जितना वार्षिक पुनर्भरण हुआ हो, उसी के अनुपात में यह तय किया जाए कि उस वर्ष रबी के मौसम में कितने क्षेत्रफल में और कौन सी फसलों की बुवाई की जाएगी। जल-सघन फसलों (जैसे गेहूं और गन्ना) के स्थान पर उच्च पोषक तत्वों वाले मोटे अनाजों (बाजरा, रागी, कोदो), कम अवधि की दलहनों और तिलहनों की खेती को अनिवार्य रूप से प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिए सरकार को इन शुष्क-प्रतिरोधी फसलों के लिए सुनिश्चित न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) में उनकी खरीद की गारंटी देनी होगी।

10.2 सहभागी भूजल प्रबंधन (Participatory Groundwater Management)

भूजल प्रबंधन को सरकारी दफ्तरों से निकालकर सीधे कृषक समुदायों के हाथों में सौंपना होगा। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ सफल मॉडलों की तर्ज पर किसानों को जल-भूविज्ञान का बुनियादी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, ताकि वे स्वयं अपने गाँव के कुओं के जल स्तर को माप सकें और सामूहिक रूप से यह नियम बना सकें कि कोई भी व्यक्ति निर्धारित गहराई से अधिक बोरवेल नहीं खोदेगा तथा व्यावसायिक कार्यों के लिए भूजल का दोहन नहीं करेगा। साझा जलभृतों को निजी संपत्ति न मानकर सामूहिक धरोहर के रूप में प्रबंधित करना ही एकमात्र स्थायी मार्ग है।

10.3 ऊर्जा-जल-खाद्य अंतर्संबंध का नीतिगत युक्तीकरण

मुफ्त बिजली की व्यवस्था को चरणबद्ध तरीके से तर्कसंगत बनाना आवश्यक है। इसके स्थान पर 'पानी बचाओ, पैसा कमाओ' जैसी प्रत्यक्ष लाभ अंतरण योजनाओं को लागू किया जाना चाहिए, जहाँ किसान द्वारा बिजली की कम खपत करने पर बची हुई सब्सिडी की राशि सीधे उसके बैंक खाते में नकद हस्तांतरित की जाए। इसके अतिरिक्त, कृषि फीडरों को सौर ऊर्जा से जोड़ते हुए दिन के समय केवल निर्धारित घंटों के लिए ही बिजली दी जाए, ताकि रात्रि में होने वाले जल अपव्यय को पूरी तरह रोका जा सके।

10.4 पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों और वाटरशेड का पुनरुद्धार

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के वित्तीय संसाधनों का अस्सी प्रतिशत भाग अनिवार्य रूप से पारंपरिक जल संचयन संरचनाओं—जैसे तालाबों से गाद निकालना, जोहड़ों की मरम्मत, मेड़बंदी, खाइयों का निर्माण और चेक डैम बनाने—में लगाया जाना चाहिए। प्रत्येक खेत में 'खेत-तालाब' (Farm Pond) और घरों में 'टांका' निर्माण को बढ़ावा देकर वर्षा जल की एक-एक बूंद को सहेजना होगा, जिससे भूजल पर से प्रत्यक्ष निर्भरता को न्यूनतम किया जा सके।

11. निष्कर्ष

प्रस्तुत स्थानिक शोध पत्र यह निर्विवाद रूप से स्थापित करता है कि भारत के शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में गिरता भूजल स्तर केवल एक मौसमी या पर्यावरणीय चुनौती नहीं है, बल्कि यह एक गहरा सामाजिक-आर्थिक और आजीविका का संकट है। हरित क्रांति के बाद अपनाए गए अनियंत्रित भूजल दोहन और अविवेकपूर्ण शस्य प्रतिरूप ने इन नाजुक पारिस्थितिकीय क्षेत्रों को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ प्राकृतिक पूंजी का निरंतर क्षरण हो रहा है।

अत्यधिक गहराई से जल निष्कर्षण ने कृषि की उत्पादन लागत को आसमान पर पहुंचा दिया है, जिसके परिणामस्वरूप जल-सघन फसलों का क्षेत्रफल तेजी से घट रहा है, भूमि क्षारीय हो रही है और

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कृषि की समग्र उत्पादकता बाधित हो रही है। इस प्रक्रिया का सबसे दुखद पहलू यह है कि इसने ग्रामीण समाज के सबसे कमजोर तबके—लघु और सीमांत किसानों—को जल-विहीन, भूमिहीन और कर्जदार बनाकर उन्हें शहरों की ओर संकटग्रस्त प्रवासन के लिए मजबूर कर दिया है।

यदि हमें इन क्षेत्रों में कृषि और मानवीय जीवन को बचाना है, तो हमें 'जल दोहन' की मानसिकता को त्यागकर 'जल संरक्षण एवं संतुलित उपभोग' की संस्कृति को अपनाना होगा। समाधान केवल और अधिक गहरे बोरवेल खोदने में नहीं, बल्कि कम पानी में अधिक उत्पादन देने वाली फसलों के चयन, सहभागी जल बजटिंग, पारंपरिक जल संरचनाओं के पुनर्जीवन और कड़े विधिक सुधारों में निहित है। समय रहते उठाए गए ये कदम ही शुष्क एवं अर्ध-शुष्क अंचलों में आजीविका सुरक्षा, सामाजिक न्याय और पारिस्थितिकीय संधारणीयता को सुनिश्चित कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल अ, नारायण सु. बूंदों की संस्कृति: भारत की पारंपरिक जल संचयन प्रणालियां. नई दिल्ली: विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र (CSE); 1997.
2. कल्ला ए के. शुष्क क्षेत्रों का भूगोल और कृषि पारिस्थितिकी. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस; 2018.
3. कुमार एम दिनेश. भारत में जल प्रबंधन और खाद्य सुरक्षा: चुनौतियां और समाधान. नई दिल्ली: मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया; 2012.
4. केंद्रीय भूजल बोर्ड. भारत के भूजल संसाधनों का राष्ट्रीय संकलन (2022). फरीदाबाद: जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार; 2022.
5. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी). पश्चिमी राजस्थान में कृषि पद्धतियों और जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: एक तकनीकी प्रतिवेदन. जोधपुर: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद; 2021.
6. जोशी पी के, त्यागी एन के. भारत में लवणीय जल से सिंचाई और मृदा स्वास्थ्य का अर्थशास्त्र. भारतीय कृषि अर्थशास्त्र शोध पत्रिका. 2016;51(3):142-158.
7. तिवारी आर सी. संसाधन भूगोल और सतत विकास. प्रयागराज: प्रवालिका पब्लिकेशंस; 2019.
8. नीति आयोग. समग्र जल प्रबंधन सूचकांक (प्रतिवेदन-2). नई दिल्ली: नीति आयोग, भारत सरकार; 2019.
9. पटेल त. उत्तरी गुजरात में गिरता भूजल स्तर और कृषक आजीविका: एक क्षेत्रीय विश्लेषण. भू-दर्शन त्रैमासिक. 2020;44(2):85-99.
10. पाठक व. हरित क्रांति के पश्चात फसल प्रतिरूप में परिवर्तन और जल संकट. योजना. 2017;61(6):28-34.
11. बंसल आर के, शर्मा वी के. अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में सूक्ष्म-सिंचाई प्रणालियों की आर्थिक उपादेयता. कृषि आर्थिकी समीक्षा. 2021;36(1):55-70.
12. भल्ला जी एस, सिंह गुरमेल. भारतीय कृषि का आर्थिक रूपांतरण: राज्य स्तरीय अध्ययन. नई दिल्ली: जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय प्रकाशन; 2014.
13. भारतीय मौसम विज्ञान विभाग. भारत में वर्षा की स्थानिक और सामयिक प्रवृत्तियां: दीर्घकालीन प्रतिवेदन. पुणे: जलवायु अनुसंधान एवं सेवाएं, IMD; 2023.
14. मिश्रा अ. आज भी खरे हैं तालाब. नई दिल्ली: गांधी शांति प्रतिष्ठान; 1993.
15. मिश्रा सतीश चंद्र. ग्रामीण प्रवासन और कृषि संकट: कारण और परिणाम. समाजशास्त्र और विकास. 2018;15(4):110-128.
16. व्यास वी एस. भारतीय कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन और छोटे किसानों की चुनौतियां. आर्थिक एवं राजनीतिक समीक्षा. 2015;50(22):40-48.
17. शाह त. भारत का भूजल संकट: तकनीकी, संस्थागत और नीतिगत विकल्प. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 2010.
18. शर्मा कौशल किशोर. सुदूर संवेदन और भौगोलिक सूचना प्रणाली द्वारा भूमि उपयोग विश्लेषण. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स; 2019.
19. शर्मा बी आर, राव के वी. जल-अल्पता वाले क्षेत्रों में पूरक सिंचाई और जल उत्पादकता संवर्धन. नई दिल्ली: अंतरराष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान (IWMI); 2017.
20. सिंह आ. सांझे की त्रासदी: भारत के साझा प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन; 2022.
21. सिंह क. ग्रामीण विकास: सिद्धांत, नीतियां और प्रबंधन. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस इंडिया; 2016.
22. सिंह आर पी, राठौड़ एम एस. राजस्थान के मरुस्थलीय जिलों में जल बाजार और छोटे किसान: एक अनुभवजन्य अध्ययन. विकास अध्ययन शोध पत्रिका. 2020;28(3):215-232.
23. सक्सेना नरेश चंद्र. भारत में जल सुरक्षा और नीतिगत विफलताएं. लोक प्रशासन जर्नल. 2018;64(2):175-194.
24. सेन अभिजित. कृषि लागत, मूल्य निर्धारण नीति और कृषक आय सुरक्षा. नई दिल्ली: राष्ट्रीय किसान आयोग प्रतिवेदन संदर्भ; 2017.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-Commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) license. This license permits sharing and redistribution of the article in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted under this license.

About the Author

Dr. Padma Gupta is an Assistant Professor of Geography at L.B.S. T.T. College, Kota, Rajasthan, India. Her academic interests include geography, environmental studies, and related areas of geographical research. She is actively engaged in teaching and academic research.

© 2026 डॉ. पदमा गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/